आकाश में काले-काले बादल घुमड़ने लगे थे। जगन्नाथजी के पास उनकी मौसी का बुलावा आया कि सुभद्रा और बलराम के साथ कटक आ जाओ। वे तीनों रवाना हुए। वहाँ उनकी खूब खातिरदारी हुई। मौसी के रसोइए ने तो जगन्नाथजी का मन ही मोह लिया। वह रोज़ उन्हें नए-नए पकवान बनाकर खिलाता। खासकर खोए की गुजिया। वह सोहन हलवा भी बनाता। सुभद्रा उसे बड़े चाव से खाती।

मौसी के यहाँ रहते हुए तीन माह कैसे गुज़र गए, पता ही नहीं चला। बरसात गुज़र गई तब कहीं जाकर जगन्नाथजी को घर की याद आई।

"हम कार्तिक को साथ ले जा रहे हैं।" जगन्नाथजी अपनी मौसी से बोले। उसके हाथ की मिठाइयाँ हमें अच्छी लगती हैं।

"मौसी, कार्तिक को हम अपने घर में ही रख लेंगे।" सुभ्रदा ने कहा।

"हाँ, हाँ ले जाओ।" मौसी ने इजाज़त दे दी।

जगन्नाथजी पूरे तीन महीने बाद अपने घर लौट रहे थे। उन्हें यह तो पता था कि घर पर उनकी पत्नी बहुत गुस्सा होंगी। पर, क्या करते डरते-डरते

कैलाश नारद

कलकत्ते का रसगुल्ला

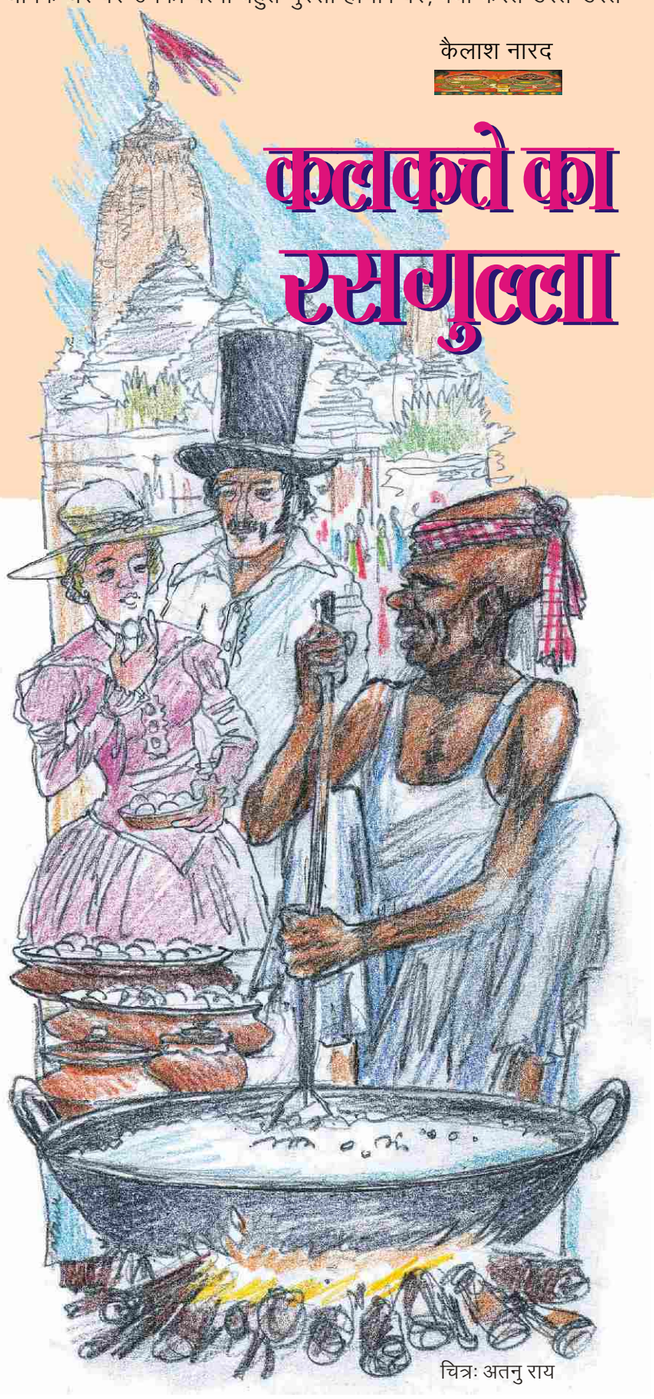

चित्रः अतनु राय

यह अकबर के ज़माने की कहानी है। करीब पाँच सौ साल पहले जगन्नाथपुरी में रसगुल्ले बनने की शुरुआत हुई। लेकिन वह मशहूर हुआ कलकत्ते के रसगुल्ले के रूप में। वह भी तब जब सूतानाटी के कृष्णचन्द्र दास ने उसे सन् 1873 में पहली बार बनाया। कृष्णचन्द्र मानिकतुल्ला में एक छोटी-सी गुमठी के बाहर भट्टी जलाकर मूँग व उड़द की दाल के उम्दा पकौड़े बनाते थे। उनके यहाँ भीड़ लगी रहती।

इन के एक दोस्त थे, रजब अली खाँ। वे कलकत्ता के बड़े हाकिम विक्टर टॉमसन के यहाँ मुंशी थे। टॉम साहब कुछ दिनों पहले सरकारी काम से पुरी गए थे जहाँ उन्होंने सफेद रसगुल्ला खाया। उनकी बीबी लिली मेमसाहब जब कलकत्ता वापस आई तो उन्होंने ज़िद पकड़ ली कि जगन्नाथजी का वैसा स्वादिष्ट रसगुल्ला उन्हें दमदम की उस फौजी छावनी में भी मिलना चाहिए। वहाँ 1872-73 में आला अफसर रहते थे। टॉम साहब ने इस समस्या का ज़िक्र अपने मुंशी से किया। कहा, "जैसे भी हो जगन्नाथ पुरी के रसगुल्ले का बन्दोबस्त कलकत्ता में करो। मुमकिन हो तो उसे यहीं के किसी हलवाई से बनवाओ। वरना पता नहीं क्या होगा?"

डरते वे घर के सामने पहुँच ही गए। उन्हें देखकर पत्नी ने कहा, "जाओ, जाओ अपनी मौसी के घर ही रहो। यहाँ आने की क्या ज़रूरत है।" और बड़बड़ाते हुए महालक्ष्मी ने घर के दरवाज़े बन्द कर दिए।

जगन्नाथजी, सुभद्रा और बलराम हक्के-बक्के रह गए। अब क्या करें? महालक्ष्मी को कैसे मनाएँ? यही सवाल चारों के मन में घूम रहा था। तब रास्ता सुझाया रसोइए कार्तिक ने। उसने जगन्नाथजी से पूछा, "मन्दिर का रसोइघर तो खुला है ना।"

"हाँ, हाँ।" जगन्नाथजी बोले।

"ठीक है।" कार्तिक बोले। "मैं वहीं जा रहा हूँ। महालक्ष्मीजी शाम तक 'आइए नन्दलालजी, आइए,' कहते हुए दरवाज़े ना खोलें तो जो सज़ा चोर की वही मेरी।"

जगन्नाथजी को ताज्जुब हुआ बोले, "तुम्हारे पास क्या कोई जादू है, कार्तिक।"

"हाँ, ऐसा ही समझिए।" कार्तिक ने जवाब दिया।

और सूरज ढलते-ढलते ही महालक्ष्मी ने ना केवल किवाड़ खोल दिए। उनके कमरे में एक तश्तरी एक नए व्यंजन से भरी थी। उस व्यंजन का आकार गोल था – चाशनी में डूबा हुआ।

"यह क्या है?" जगन्नाथजी ने कहा।

"हम का जाने इस मिठाई का नाम। इसे मौसी के रसोइए ने बनाया है। इसे खाने के बाद ही तो हमारा गुस्सा खत्म हो गया। लीजिए, लीजिए आप तीनों भी खाइए।"

मिठाई सचमुच बड़ी स्वादिष्ट थी। इतनी नरम और नाज़ुक कि मुँह में रखो तो तुरन्त घुल जाए।

जगन्नाथजी ने पूछा, "इस मिठाई को तुमने बनाया कैसे?"

"दूध को नींबू से फाड़कर उसका जो छेना बना भैया उसी को चासनी में पका दिया। बहुजी रूठी हुई थीं ना, सोचा क्यों ना नई मिठाई बनाकर उन्हें मनाया जाए।"

"इसका नाम क्या है?" जगन्नाथजी ने पूछा।

"रसगुल्ला, छेने का रसगुल्ला।"

रजब अली ने सारी बात कृष्णचन्द्र को बताई। वे भी चिन्ता में पड़ गए। बड़े हाकिम की ज़िद। क्या मालूम फरमाईश पूरी ना होने पर गर्दन ही कटवा दें। छेना दूसरे दिन तक टिकता ही नहीं इसलिए जगन्नाथपुरी से कलकत्ता लाने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। रजब अली ने कृष्णचन्द्र से कहा, "कोई रास्ता तुम्हीं निकालो दोस्त। शहर की इज़्ज़त का सवाल है। मेरी नौकरी चली जाएगी इस रसगुल्ले के कारण।"

लाचार कृष्णचन्द्र ने जगन्नाथ पुरी का रास्ता पकड़ा। लेकिन वहाँ किसी अजनबी के मन्दिर की रसोई में जाने पर सख्त पाबन्दी थी। वहाँ कोई अजनबी दिख भी जाता तो जगन्नाथजी के लठैत लट्ठ उठाकर चिल्लाने लगते, "भाग चल भाग, यहाँ से।"

जगन्नाथपुरी का रसोईघर आज भी दुनिया का सबसे बड़ा रसोड़ा माना जाता है। कहते हैं वहाँ रोज़ दस हज़ार लोगों के लिए प्रसाद एक-एक बार में तैयार होता है। यह कहावत भी तो है कि *जगन्नाथ के भात को, जगत पसारे हाथ।*

कृष्णचन्द्र हिम्मत हारने वाले नहीं थे। दूध की बड़ी-बड़ी मटकियाँ काँवर में लेकर ग्वाले के भेष में उन्होंने मन्दिर में जाना शुरू किया। कार्तिकचन्द्र की सातवीं पीढ़ी के पदमचन्द्र उन दिनों जगन्नाथजी के रससगुल्ले बना रहे थे। वे बूढ़े हो गए थे। उनकी कोई सन्तान भी नहीं थी। कार्तिक चन्द जिस कौशल से रसगुल्ले बनाते थे वैसी सफाई पद्मचन्द के पास भी थी। लेकिन उनके बाद वैसा रसगुल्ला जगन्नाथपुरी से विलुप्त हो जाने वाला था, यह तय था।

पद्मचन्द के पास भी थी। लेकिन उनके बाद वैसा रसगुल्ला जगन्नाथपुरी से विलुप्त हो जाने वाला था, यह तय था।

पूरे दो महीने जगन्नाथ पुरी के मन्दिर में दूध मुहैया कराते-कराते आखिर कृष्णचन्द्र ने वैसा नरम और रेशमी छेने वाला रसगुल्ला बनाना सीख ही लिया। वे कलकत्ता लौट आए। 28 दिसम्बर 1973 की उस सर्द शाम को उन्होंने अपने हाथों से रसगुल्ले बनाए। इन्हें विक्टर टॉमसन और उनकी बीबी लिली की खातिर खासतौर पर ले जाया गया। उन रसगुल्लों को पेश करते हुए मुंशी रजब अली ने कहा तीन दिन बाद ही सही, इसे मेरी तरफ से बड़े दिन का तोहफा समझकर कबूल करें।

साहब खुश हुए और रजब अली की तनख्वाह बढ़ा दी। सिर्फ उनकी तनख्वाह ही नहीं बढ़ी जगन्नाथजी का रसगुल्ला पूरे बंगाल में छा गया। और फिर पूरे भारत में। लेकिन पुरी के रसगुल्ले के रूप में नहीं बल्कि बंगाली मिठाई का नाम से।

कहते हैं रसगुल्ले को बाज़ार में आए तकरीबन 136 साल हो गए हैं। कृष्णचन्द्र की पुरानी दुकान अब भी है। रसगुल्ले के अलावा वहाँ छेने की पचासों और मिठाइयाँ बनने लगी हैं। और हाँ, सुनते हैं कलकत्ता विश्वविद्यालय में सफेद रसगुल्ले पर शोध भी किया जा रहा है।